विषय	हिंदी
प्रश्नपत्र सं. एवं शीर्षक	**P2: मध्यकालीन कविता - 1**
इकाई सं. एवं शीर्षक	**M14: जैन साहित्य**
इकाई टैग	**HND_P2_M14**

निर्माता समूह	
प्रमुख अन्वेषक	**प्रो. गिरीश्वर मिश्र** कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : misragirishwar@gmail.com
प्रश्नपत्र समन्वयक	**प्रो. कृष्ण कुमार सिंह** अधिष्ठाता, साहित्य विद्यापीठ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : kks5260@gmail.com
इकाई लेखक	**प्रो. ओमप्रकाश सिंह** प्रोफेसर, भारतीय भाषा केंद्र, भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन विद्यापीठ जवाहर लाल नेहरु विश्वविद्यालय, नई दिल्ली ईमेल : singhop.jnu@gmail.com
इकाई समीक्षक	**प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित** प्रोफेसर (सेवानिवृत्त), हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र) ईमेल : suryadixit123@gmail.com
भाषा संपादक	**प्रो. कृष्ण कुमार सिंह** अधिष्ठाता, साहित्य विद्यापीठ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : kks5260@gmail.com

पाठ का प्रारूप

1. पाठ का उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. काव्यसंवेदना
4. निष्कर्ष

1. पाठ का उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के उपरांत आप -

- जैन साहित्य के विषय में समझ सकेंगे।
- अपभ्रंश साहित्य में जैन कवियों के योगदान से परिचित हो सकेंगे।
- भक्ति-साहित्य की पृष्ठभूमि के रूप में जैन साहित्य को समझ पाएंगे।
- काव्य-रूपों के विकास में जैन रचनाकारों की महत्ता से परिचित हो सकेंगे।

2. प्रस्तावना

अपभ्रंश भाषा और साहित्य को आगे बढ़ाने में जैन रचनाकारों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। आठवीं शताब्दी से लेकर सोलहवीं शताब्दी तक जैन साहित्य का अविकल लेखन होता रहा। इतने लम्बे समय तक निर्मित होने वाली साहित्य-परम्परा का कुछ अंश ही आज तक सामने आ पाया है। धर्म और साहित्य का सफल संयोग जैन कवियों के यहाँ मिलता है। एक तरफ तो जैन साहित्य में धर्मोपदेशों की भरमार है, वहीं दूसरी तरफ साहित्य और काव्य-रूपों की महत्त्वपूर्ण विकास परम्परा है। ऐसी स्थिति में जैन साहित्य का महत्त्व जहाँ कथानक और काव्य सम्वेदना के स्तर पर है वहीं साहित्य के शिल्प पक्ष की दृष्टि से भी। हिंदी साहित्य के विकास की अविच्छिन्न परम्परा को जैन साहित्य के अभाव में नहीं समझा जा सकता है।

3. काव्य संवेदना

अपभ्रंश भाषा में जैन साहित्य से पहले प्राकृत में जैन साहित्य की बहुत ही सुदृढ़ परम्परा मिलती है। काव्यरूपों और साहित्य-शैली का पूर्ण विकास जैनियों की इस साहित्य परम्परा में हो चुका था। अपभ्रंश जैन साहित्य भी इस विकास परम्परा में दो रूपों में मिलता है- प्रबंध साहित्य और मुक्तक साहित्य । इस आधार पर इनकी काव्य संवेदना और रचना का मूल उद्देश्य भी अलग-अलग हो जाता है। जैन साहित्य की काव्य संवेदना को इन दोनों स्तरों पर समझने के लिए इनका विश्लेषण प्रबन्ध और मुक्तक इन दोनों आधारों पर करना अनिवार्य हो जाता है।

3.1 प्रबंध काव्य

जैन साहित्य की अनेक कृतियों में आदि से अंत तक एक ही कथा का प्रवाह मिलता है। इन रचनाओं में प्रबंध की लगभग सभी काव्यशास्त्रीय परम्पराओं का न्यूनाधिक पालन किया गया है। सर्गबद्धता, संधि-प्रयोग, वर्णनात्मकता इन रचनाओं की विशेषताएं हैं। कथानक के स्तर पर भी प्राचीन परम्परा का निर्वाह अपभ्रंश के जैन रचनाकारों ने किया है। जैन साहित्य की प्रतिनिधि प्रबंधात्मक रचनाएँ हैं-

(i) पुराण और चरित काव्य - जैन साहित्य में पुराणों और चरित-काव्यों की महत्त्वपूर्ण परम्परा दिखाई देती है। जैन धर्म के पुराण और चरित काव्य संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तीनों भाषाओं में मिलते हैं। ये पुराण और चरित-काव्य तीर्थंकरों जैसे ऋषभदेव, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर एवं लोक-प्रसिद्ध व्यक्तियों को केंद्र में रखकर लिखे गये हैं- जैसे नागकुमार चरित, यशोधर चरित, करकंडु चरित आदि। रामकथा और कृष्णकथा को भी जैन साहित्य में पर्याप्त महत्त्व दिया गया है।

पउमचरिउ - अपभ्रंश की पहली प्रबंध रचना जैन कवि स्वयंभू की है। यह रचना रामकथा पर आधारित है। अब तक स्वयंभू की तीन रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं- पउमचरिउ, रिट्ठणेमिचरिउ और स्वयंभू छंद। जैन साहित्य में रामकथा की अविच्छिन परम्परा मिलती है। प्राकृत में विमलसूरि का 'पउमचरिउ' और संस्कृत में रविषेणाचार्य 'पद्मपुराण' इस परम्परा की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं। स्वयंभू द्वारा रचित 'पउमचरिउ' पाँच कांडों में विभाजित है- विद्याधर कांड, अयोध्या कांड, सुन्दर कांड, युद्ध कांड और उत्तर कांड। गुरु और आचार्यों की वंदना से रामकथा की शुरुआत की गई है-

इय चउवीस वि परम जिण पणवेप्पिणु भावे।
पुणु आरंभिय रामकह, रामायण कावें।।

मूल कथा का प्रारंभ मगध देश के राजा श्रेणिक की भ्रांतियों से हुआ है। ये भ्रांतियां रामकथा के सम्बन्ध में लोक की भ्रांतियां हैं। इन भ्रांतियों का निवारण करने हेतु गौतम गणधर रामकथा प्रारंभ करते हैं। काव्य का आरम्भ प्राचीन परम्परा के अनुसार आत्मनिवेदन के साथ होता है, लेकिन रचनाकार का भरपूर आत्मविश्वास भी इस आत्मनिवेदन में छिपा हुआ है। स्वयंभू ने निवेदन किया है- मेरे समान कुकवि कोई दूसरा न होगा। न तो मैं कुछ व्याकरण जानता हूँ और न वृत्ति-सूत्र का व्याख्यान ही कर सकता हूँ न मैंने पाँचों महाकाव्यों को सुना है और न पिंगल-प्रस्तार आदि छंद-लक्षण ही जानता हूँ। भामह, दंडी के अलंकारशास्त्र से भी मैं परिचित नहीं हूँ; फिर भी मैं काव्य-रचना का व्यवसाय छोड़ने में असमर्थ हूँ। रामकथा लिखने का मूल उद्देश्य उसे सामान्य जन तक पहुँचाने का है। इसीलिए भाषा भी सामान्य जन की ही चुनी गई है। राम का चित्रण स्वयंभू ने मानवीय चरित्र के रूप में किया है। उसमें किसी आदर्श या अलौकिकता का समावेश नहीं किया गया है। राम-चरित्र के गुण-दोषों के प्रति रचनाकार की समान दृष्टि रही है। एक ओर दैवी आपदा के समक्ष राम के पौरुष का ओजस्वी चित्रण है तो दूसरी ओर सीता-हरण और मूर्छित लक्ष्मण के प्रसंग में सामान्य मानवीय संवेदनाओं से ओत-प्रोत मनुष्य के करुण क्रंदन तथा मानव सुलभ कमजोरियों का भी उतना ही व्यावहारिक वर्णन स्वयंभू ने किया है। सीता की अग्नि-परीक्षा के सन्दर्भ में इसे देखा जा सकता है-

महिलउ होंति असुद्ध णिलज्जउ
दस-दाविय कडक्ख- विक्खेवउ
कुडिल-मइउ वड्ढिय अवलेवउ
बाहिर-धिट्ठउ गुण परिहीणउ
किह सय-खडु न जंति ति हीणउ
णउ गणंति णिय-कुल मइलंतउ
तिहुअणे अयस-पडहु वज्जंतउ
अंगु समोडेवि धिद्धिक्कार हो
वयण णिएंति केम भत्तारहो।

राम के चरित्र के ऐसे चित्रण के बाद रचनाकार कर्म-फल के सिद्धांत के ऊपर इस समस्त सामाजिक यथार्थ को निछावर कर देता है। इसी कर्मफल-दर्शन के साथ जैन जीवन-दर्शन का स्वीकार सीता के द्वारा किया जाता है। मानव-मन के विविध भावों और विकारों का वास्तविक वर्णन इस रचना में किया गया है। मानसिक संवेदनाओं को रचनाकार ने बहुत ही मार्मिक और स्वाभाविक रूप में उभारा है। सामान्य मनुष्य को केंद्र में रखकर जिस उद्देश्य से रामकथा की सृष्टि स्वयंभू द्वारा की गई है, उसका भाषिक स्तर पर भी आद्यंत निर्वाह किया गया है।

महापुराण - महापुराण जैन सम्प्रदाय की एक महत्त्वपूर्ण रचना है। पुष्पदंत की इस कृति का पूरा नाम 'तिसट्ठि' महापुरुष गुणालंकार' (त्रिषष्टि महापुरुष गुणालंकार) है। इसमें दो खंड हैं- आदिपुराण और उत्तरपुराण। उत्तरपुराण की ग्यारह संधियों में रामकथा का वर्णन किया गया है। पुष्पदंत ने रामकथा की परम्परा में स्वयंभू का उल्लेख किया है। इस रामकथा में ब्राह्मण धर्म समर्थित रामकथा के विरोध का भाव निहित है। पुष्पदंत ने कहा है कि वाल्मीकि और व्यास के शब्दों में प्रवंचना है। उन्होंने लोक में एक भ्रम फैला रखा है। इसी भ्रम के निवारणार्थ गौतम राम की कथा कहते हैं। इस आधार पर रामकथा की एक अन्य परम्परा का भी बोध होता है, जो ब्राह्मण परम्परा से अलग अस्तित्व रखती रही होगी। पुष्पदंत की रामकथा में ब्राह्मण-विरोधी स्वर स्वयंभू की अपेक्षा अधिक तीव्र है।

उत्तरपुराण की बारह संधियों में कृष्ण-कथा का वर्णन है। कृष्ण-कथा से सम्बंधित ग्रंथों को जैन परम्परा में 'हरिवंश पुराण' कहा गया है। रामकथा की अपेक्षा कृष्ण-कथा का वर्णन पुष्पदंत ने अधिक रुचि के साथ किया है। कृष्ण का बाल-लीला का स्वरूप भी बहुत स्वाभाविक रूप में इस ग्रन्थ में आया है। बालसुलभ कोमल प्रसंगों के साथ कृष्ण की पौरुषपूर्ण लीलाओं का भी चित्रण पुष्पदंत ने किया है। इसके बावजूद इन लीलाओं में भक्ति भावना और अलौकिकता का अभाव है। महापुराण की भाषा आदर्श साहित्यिक अपभ्रंश का उदाहरण है। कहीं-कहीं देशज और ध्वनिमूलक शब्दों का भी प्रयोग किया गया है।

प्रद्युम्न चरित - 'प्रद्युम्न चरित' कृष्ण और रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न को आधार बना कर लिखा गया है। इसके रचनाकार कवि 'संधारू' हैं। धार्मिक प्रचार के उद्देश्य से लिखे गये इस ग्रन्थ में विभिन्न वर्णनों, अवांतर कथाओं और घटनाओं से पूरे कथानक को आकर्षक बनाने का प्रयास किया गया है। यही इसका साहित्यिक महत्व भी है। धार्मिक आचार-विचार के साथ ही तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों और उसमें जन-सामान्य को भी चित्रित करने के कारण यह रचना धार्मिकता का अतिक्रमण कर साहित्य की सीमा में आ जाती है। कई संवेदनात्मक स्थल कथानक के विकास से जुड़े हुए हैं जिनका कवि ने सरस वर्णन किया है। धार्मिक रचनाओं में सामान्यतया वर्णित कष्ट, दुष्चक्र और विरक्ति के अतिरिक्त व्यंग्य और विनोद का भी सफल प्रयोग कवि ने किया है।

णायकुमार चरिउ - यह महाकवि पुष्पदंत की ही रचना है। इस कृति में श्रुतपंचमी की महिमा बताते हुए मगध के राजा जयन्धर के पुत्र की कथा का वर्णन है। यह धार्मिक वातावरण युक्त प्रेमकथा है। कृति की मूल आत्मा प्रेम से आप्लावित है, लेकिन उस पर धर्म का आवरण डाला गया है। इसमें नागकुमार के कई विवाहों, प्रेम-क्रीड़ाओं, सपत्नी-ईर्ष्या आदि का वर्णन है। अंत में नागकुमार तपस्वी होकर मोक्ष प्राप्त करता है।

जसहरचरिउ - 'जसहरचरिउ' चार संधियों की एक छोटी सी रचना है। इस कृति में हिंसा का विरोध करते हुए जसहर की कथा कही गई है। इस कृति में काव्यात्मकता का लगभग अभाव है। इसका मूल उद्देश्य हिंसा पर आधारित धर्मों की निंदा करते हुए जैन धर्म के अहिंसाव्रत के महत्त्व को स्थापित करना है। स्त्री की कठोर प्रकृति का चित्रण पुष्पदंत ने इसमें किया है।

करकंडु चरिउ - करकंडु जैन धर्म के दोनों सम्प्रदायों में समान रूप से लोकप्रिय है। इन्हीं को केंद्र में रखकर कनकामर मुनि ने 'करकंडु चरिउ' की रचना की है। यह ग्रन्थ पद्धडिया शैली में लिखा गया है। करकंडु चंपा के राजकुमार थे, लेकिन पिता को अपने पुत्र की पहचान नहीं रहती है। करकंडु दन्तिपुर का राजा बन जाता है और पिता-पुत्र में युद्ध होता है। अंत में भारतीय लोककथाओं की संरचना के अनुरूप पिता-पुत्र का मिलन होता है। करकंडु के प्रेम और विवाह का भी वर्णन इस रचना में है। इस मुख्य कथा के अतिरिक्त नौ अवांतर कथाओं का भी विस्तार इस रचना में है।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण चरित काव्य, जैसे धवल का 'रिट्ठणेमि चरिउ', वीरकवि का 'जम्बूस्वामी चरित', नयनंदि का 'सुदंहमण चरिउ' तथा लाखू का 'जिणदत्त चरिउ' आदि हैं।

(ii) कथा-काव्य - जैन धर्म से सम्बंधित कथा-काव्य साहित्य-विकास की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता है कि ये कवि की अपनी कल्पना और लोक-प्रचलित कथाओं के संयोजन से निर्मित हुए हैं। साहित्य की यह संरचना हिंदी के सूफी साहित्य की पृष्ठभूमि का निर्माण करती है। प्रमुख कथाकाव्य हैं- 'भविष्यत्त कहा', 'अंजना सुंदरी कहा', 'कुवलयमाला कहा', 'विलासवती कहा' तथा 'जिनरचित कहा' आदि।

भविष्यत्त कहा - सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और चर्चित कथाकाव्य है धनपाल द्वारा रचित 'भविष्यदत्त कहा'। इसका दूसरा नाम 'सुयपंचमी कहा' है, जो सुयपंचमी के महत्त्व को स्थापित करने हेतु लिखा गया है। यह जैन साहित्य का सर्वप्रथम सम्पादित होने वाला ग्रन्थ है। डॉ. हरमन याकोबी को यह रचना सबसे पहले 1913-1914 ई. में अहमदाबाद के एक जैन भंडार में देखने को मिली। डॉ. गुणे और श्री दलाल ने इसका संपादन किया। यह 1923 ई. में गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज में प्रकाशित हुई। भविष्यदत्त राजपुर के नगरसेठ का पुत्र है, जिसे सौतेली माँ और भाइयों के विश्वासघात के कारण कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। लेकिन अपनी माँ और स्वयं के सदाचार के चलते सारी कठिनाइयाँ सुखद जीवन के साधन में परिवर्तित हो जाती हैं। कृति की पूरी संरचना लोककथाओं के अनुरूप है। परम्परा के अनुसार धर्म और न्याय के पक्ष का उत्तरोत्तर विकास इस ग्रन्थ में दिखाया गया है। अनेक काव्यपूर्ण स्थल इस रचना में जगह-जगह मिलते हैं। नगर और श्रृंगार आदि के वर्णन में चरित काव्यों की अपेक्षा इस रचना का काव्यत्व प्रभावी है। इसकी भाषा तो साहित्यिक अपभ्रंश है, लेकिन देशी शब्दों और लोकोक्तियों का प्रयोग कथा-भाषा का निर्माण करता है। पुष्पदंत और स्वयंभू की अलंकृत शैली का अभाव इसमें दिखाई देता है, लेकिन यह अभाव ही इसे अधिक स्वाभाविक रूप प्रदान करता है।

(iii) रासो काव्य - रासो या रास अपने समय का सबसे प्रचलित काव्य-रूप था। इस काव्य-रूप का आरंभिक सम्बन्ध लोक-गेय-नृत्य से है। इसे लोक-गेय रूपक भी कहा गया है। इसकी लोक-प्रसिद्धि के कारण ही धर्म से लेकर दरबारी साहित्य की सर्वाधिक रचनाएँ इस काव्य-रूप में हुई हैं। जैन संप्रदाय में भी इसके लोक-प्रचलित रूप के कारण रासो को पर्याप्त महत्त्व मिला। जैन धर्म में धार्मिक रास के साथ ही शुद्ध वीरतापरक रास-काव्य भी लिखे गये। शालिभद्र सूरि का 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' विशुद्ध वीरपरक रास का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है। इसमें ऋषभदेव के दो पुत्रों भरतेश्वर और बाहुबलि के बीच राज्य के लिए होने वाले युद्ध की कथा है। जिनदत्त सूरि के 'उपदेश रसायन रास' और शालिभद्र सूरि के 'बुद्धिरास' में विशुद्ध जैन धर्मोपदेश हैं। इसी प्रकार आसगु के 'जीवदया रास' में जीवों के प्रति दया-धर्म की शिक्षा दी गई है। आसगु की ही एक अन्य रचना 'चंदनबाला रास' है। यह जैन श्राविकाओं की देवी चंदनबाला के जीवन पर आधारित कथा-कृति है। इसमें चंदनबाला के माध्यम से स्त्रियों को सतीत्व, संयम और आचरण की पवित्रता की शिक्षा दी गई है। इसके अतिरिक्त धर्मसूरि का 'जम्बूस्वामी रास', विजयसेन सूरि का 'रेवंतगिरि रास', अम्बदेव सूरि का 'समरा रास' और अज्ञात कवि का 'कच्छुलि रास' इस परम्परा की महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

(IV) फागु काव्य - रास के ही समान फागु का सम्बन्ध भी लोक-प्रचलित काव्य से है। वसंत में गाये जाने वाले गीतों से फागु काव्य-रूप का उत्स माना गया है। इसे गेय-रूपक भी कहा जाता है, जिसकी परम्परा आज भी वर्तमान है। जैन साहित्य में अज्ञात कवि की 'जिनचंद सूरि फागु' इस काव्य-रूप की पहली रचना है। इसकी मूल प्रति जैसलमेर ग्रन्थ भंडार की एक हस्तलिखित पोथी में मिली थी। यह पच्चीस छंदों की लघु रचना है। जिनचंद सूरि के शील और संयम का सांसारिकता पर विजय ही इस रचना का मुख्य उद्देश्य है। जिन पद्मसूरि की 'सिरि थूलि भद्द फागु' इस परम्परा की महत्त्वपूर्ण कृति है। यह सत्ताईस छंदों की भावात्मक दृष्टि से अत्यंत सरस रचना है।

इसमें मुनि स्थूलिभद्र की चारित्रिक उदात्तता का वर्णन है, जिन्होंने रूपवती कोशा वेश्या के सभी आग्रहों को ठुकराकर अपने त्याग और तप के बल का परिचय दिया था। इस फागु में स्त्री और प्रकृति का बहुत ही मनोरम चित्रण किया गया है। कविता का नाद-सौन्दर्य भी इस फागु की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। राजशेखर सूरि की 'नेमिनाथ फागु' भी सत्ताईस छंदों की रचना है। इसमें नेमिनाथ और राजमती की कथा कही गई है। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से यह रचना महत्त्वपूर्ण है। जहाँ एक ओर नेमिनाथ की चारित्रिक दृढ़ता और निष्ठा का वर्णन है, वहीं दूसरी ओर राजुल देवी के रूप सौन्दर्य और उसके विरह का भी मार्मिक चित्रण किया गया है। दोनों विपरीत भावों को रचनाकार ने उत्कृष्टता प्रदान की है। इन रचनाओं के अतिरिक्त 'जम्बूस्वामी फागु' और 'रावणि पार्श्वनाथ फागु' इस धारा में मिलने वाली जैन रचनाएँ हैं।

(v) चउपई काव्य - संभवतः चउपई छंद की प्रधानता के कारण इसे चउपई काव्य कहा गया। यह काव्यरूप आकार में संक्षिप्त, लेकिन स्वभाव से वर्णनात्मक होता है। जैन साहित्य परम्परा में कुछ महत्त्वपूर्ण चउपई-काव्य मिलते हैं। रल्ह कवि की 'जिनदत्त चउपई' की रचना का आधार अपभ्रंश कवि लाखू या लक्खण द्वारा लिखा गया 'जिणदत्त चरित' है। रल्ह ने अपनी रचना में इसका उल्लेख भी किया है। यह ग्यारह संधियों का एक कथा-काव्य है, जिसमें धर्म के आवरण में प्रेम का वर्णन किया गया है। इस रचना में जिनदत्त की कई पौरुषपूर्ण कथाओं, विवाहों और जैन धर्म की दीक्षा और तपस्या का वर्णन है। रचना का मूल उद्देश्य जैन धर्म का प्रचार-प्रसार ही है लेकिन कथा के ताने-बाने में तत्कालीन समाज और सामाजिक जीवन की विविध झाँकियाँ जगह-जगह मिलती हैं। विनयचन्द्र सूरि कृत 'नेमिनाथ चउपई' इस काव्यरूप की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना है। इस रचना का केंद्रीय तत्त्व राजमती या राजुल देवी का विरह-वर्णन है। यह विरह-वर्णन बारहमासा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अब तक उपलब्ध साहित्यिक कृतियों में 'बारहमासा' का सबसे पहला प्रयोग इसी रचना में किया गया है। इसलिए इस रचना का महत्त्व और भी बढ़ जाता है, क्योंकि बारहमासा आगे की साहित्यिक परम्परा में बहुत दृढ़ता के साथ उभरा। विरह-प्रधान रचना होने के कारण पूरा वर्णन मर्म को स्पर्श करने वाला है, जिसे आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने श्रेष्ठ कवि और कृति का महत्त्वपूर्ण आधार माना है। इस लिहाज से भी 'नेमिनाथ चउपई' विशेष स्थान रखता है। जैन सम्प्रदाय से जुड़ी रचना होने पर भी इसमें मानवीय भावों का अत्यंत सरस वर्णन किया गया है। अंतिम कुछ छंदों को छोड़कर कहीं भी किसी धार्मिक उपदेश या क्रिया-कलाप का कोई चित्रण नहीं है। श्रृंगार रस की इस रचना का अंत भी अन्य जैन रचनाओं के समान शांत रस में हुआ है। इन रचनाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य चउपई-काव्य भी जैन धर्म में लिखे गये (जैसे- 'सुभद्रा सती चउपई', 'मंगल कलस चउपई', 'सम्यकत्व माइ चउपई', 'पद्मावती चउपई' आदि)।

3.2 मुक्तक साहित्य - जैन मुक्तकों में रहस्यवादी और उपदेशात्मक दो धाराएँ मिलती हैं। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:

(i) रहस्यवादी धारा - यह धारा मुक्तक जैन साहित्य की अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण धारा है। इस धारा की कृतियाँ अधिक मात्रा में उपलब्ध नहीं हो पाई हैं, लेकिन जो भी मिली हैं वे खास सामाजिक-सांस्कृतिक हलचलों को अपने भीतर समेटे हुए हैं। योगीन्द्र, रामसिंह, सुप्रभाचार्य, महानंदि, महचंद आदि इस धारा के महत्त्वपूर्ण रचनाकार हैं। योगीन्द्र को जोइंदु भी कहा जाता है। इनकी दो रचनाएँ मिली हैं- परमात्म प्रकाश और योगसार। मुनि रामसिंह की एक रचना 'पाहुड़ दोहा' उपलब्ध है। पाहुड़ का अर्थ जैन सम्प्रदाय में धार्मिक सिद्धांत-संग्रह के रूप में किया गया है। सुप्रभाचार्य की सतहत्तर छंदों की एक छोटी सी कृति 'वैराग्य सार' मिलती है। महानंदि के नाम से एक रचना 'आनंदा' मिलती है। इसे लेकर मतभेद है कि यह इनकी मौलिक कृति है या संगृहीत। मुनि महचंद की एक रचना

आमेर भंडार से मिली है। यह ककारादि क्रम में लिखी गई है। लगभग सभी जैन मुनियों की रचनाओं में एक साम्य दिखाई देता है। यह साम्य उनकी आतंरिक चेतना का है। इनका सम्बन्ध तो जैन सम्प्रदाय से ही है, लेकिन इनका साधना पंथ दूसरे रहस्यवादी साधकों के ही समान उदार और व्यापक है। बाह्य नियम-आचारों, कर्मकांडों, व्रत-तीर्थाटन आदि का बहिष्कार इस धारा की खास विशेषता है। ये मुक्तक रचनाएँ प्रबंध-रचनाओं की अपेक्षा साम्प्रदायिक विधि-निषेधों से मुक्त हैं। जैन-धर्म से जुड़े होने के बावजूद इन कवियों की रचनाएँ सामान्य मनुष्यता को संबोधित हैं, न कि किसी खास धर्म या सम्प्रदाय को स्थापित करने वाले सारे भेदापभेदों का निषेध इन कविताओं का मुख्य स्वर है। योगीन्द्र या जोइंदु ने जीवों में भेद दृष्टि रखने वाले व्यक्तियों को 'मूढ़' कहा है। ये रचनाकार आत्मा और परमात्मा में भी कोई भेद नहीं मानते हैं। समस्त बाह्याडम्बरों के खिलाफ लोक में सामान्य मनुष्य की स्थापना और सरल जीवन-शैली ही इन जैन मुनियों का मूल उद्देश्य है। समस्त जीवन-कर्म एक ही उद्देश्य की पूर्ति के साधन हैं और वह उद्देश्य है अपने वास्तविक स्वरूप में वास्तविक मनुष्य की पहचान। जोइंदु के अनुसार-

देउल देउ वि सत्थु गुरुए तित्थु वि वेउ वि कब्बु।
बच्छु जु दीसै कुसुमियउए इंधणु होसइ सब्बु।।

(ii) उपदेशात्मक धारा - प्राकृत की परम्परा के अनुसार ही अपभ्रंश में भी कुछ ऐसी मुक्तक रचनाएँ मिलती हैं, जिनमें जैन सम्प्रदाय से सम्बंधित व्रत, तीर्थ, आचार-विचार और नीति विषयक उपदेशों का वर्णन किया गया है। इन रचनाओं का मूल उद्देश्य गृहस्थों और श्रावकों को पाप-पुण्य, धर्म-अहिंसा, लोभ-त्याग और इंद्रिय निग्रह की शिक्षा देना था। देवसेन की 'सावयंधम्म दोहा' इस परम्परा की सबसे महत्त्वपूर्ण रचना है। इसका संपादन प्रो. हीरालाल जैन ने किया है। जिनदत्त सूरि की 'चर्चरी', 'उपदेश रसायन रास' और 'काल स्वरूप कुलक' भी इसी तरह की रचनाएँ हैं। जयदेव मुनि की 'भावना संधि प्रकरण' भी इसी धारा की रचना है। विजयचंद्र मुनि की रचनाएँ 'कल्याण रासु' और 'चुनड़ी' भी इसी उद्देश्य की रचनाएँ हैं।

4. निष्कर्ष

अपभ्रंश साहित्य में जैन रचनाकारों का महत्वपूर्ण स्थान है। आठवीं शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी तक अनेक महत्वपूर्ण जैन काव्य कृतियों की रचना हुई है। जैन कवियों का अधिकतर साहित्य जैन धर्म के आदर्शों पर आधारित है। इन कवियों ने प्रबंध और मुक्तक दोनों तरह के काव्य लिखे हैं। प्रबंध काव्य की परंपरा जैन कवियों से ही शुरू होती है। इन कवियों ने राम और कृष्ण के चरित्र को आधार बनाकर अनेक प्रबंध काव्य लिखे पर उनके राम और कृष्ण जैन सिद्धांतों के अनुरूप हैं। मुक्तक काव्यों की रचना जैन साहित्य में कम हुई है पर उनमें लोक प्रचलित मान्यताओं का सुन्दर समावेश है।